जैसी माँ वैसी बेटी

पूर्णिमा सिन्हा
व
सुपूर्णा सिन्हा

महिला वैज्ञानिकों की बात करें तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत ही गिने-चुने नाम ध्यान में आते हैं। हिन्दुस्तान के सन्दर्भ में तो अक्सर एकाध नाम भी नहीं सूझता। इसका एक कारण तो स्पष्ट है कि सामाजिक असमानताओं और स्टीरियोटाइप्स के चलते बहुत कम महिलाएँ उच्चतर शिक्षा हासिल कर पाती हैं - वह भी आमतौर पर, विभिन्न तरह के बहुत-से संघर्षों से गुज़रते हुए।

उतना ही महत्वपूर्ण दूसरा कारण यह है कि जो महिलाएँ विज्ञान में शोधरत हैं उनके बारे में आज भी लोगों को बहुत ही कम पढ़ने को मिलता है। इस कमी को पाटने की तरफ एक कदम उठाया है इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेज़ ने। उनकी 'वीमेन इन साइंस' पहल के तहत 'लीलावतीज़ डॉटर्स' पुस्तक कुछ महीने पहले प्रकाशित हुई जिसमें हिन्दुस्तान की सौ महिला वैज्ञानिकों के लेख हैं - उनके काम, विचार व संघर्षों के बारे में।

इस पुस्तक के कुछ महत्वपूर्ण लेख आप तक पहुँचाने की कड़ी में हम सुपूर्णा सिन्हा के इस लेख से शुरुआत कर रहे हैं। अगले कुछ अंकों में यह प्रयास जारी रहेगा।

विज्ञान को अपने जीवन का ध्येय और वृत्ति बनाने को मुझे प्रेरित करने वाले किरदारों में निश्चित ही मेरी माँ - पूर्णिमा सिन्हा (विवाहपूर्व सेनगुप्ता) की भूमिका सबसे अहम रही है। माँ एक भौतिकशास्त्री थीं। कोलकाता विश्वविद्यालय से भौतिकी में पीएच.डी. करने वाली पहली महिला। उन्हें प्रो. एस.एन. बोस के साथ काम करने का विशेष सौभाग्य मिला - वही एस.एन. बोस जिन्होंने बोस स्टेटिस्टिक्स का

आविष्कार किया और जो बंगाल के पुनर्जागरण की उपज थे। दरअसल, उन्होंने ही इस बात पर ज़ोर दिया था कि माँ अपनी एक्स-रे मशीन खुद बनाएँ, बिलकुल नए सिरे से। इसके लिए माँ ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद कोलकाता के फुटपाथों पर कबाड़ के रूप में बिकने वाले सैन्य उपकरणों का उपयोग किया था।

अपनी पीएच.डी. के बाद, 1963-64 में माँ अमरीका के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में जैव-भौतिकी के अन्तर्गत 'जीवन की उत्पत्ति' विषय पर काम करने लगीं। यह काम जीवविज्ञान और भौतिकी, दोनों से सम्बन्धित था और इसके तहत उन्होंने मिट्टी (क्ले) और डीएनए के डबल-हेलिक्स से सम्बन्धित ढाँचों का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा जे. सी. बोस इंस्टिट्यूट में काम किया। इसके बाद बीस वर्षों तक वे सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट में सिरेमिक के रंगों की भौतिकी पर काम करती

1951 के मध्य के आस-पास मैंने कोलकाता की खैरा प्रयोगशाला में प्रो. एस.एन. बोस के साथ अपनी पीएच.डी. पर काम करना शुरू किया। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं भारत के विभिन्न इलाकों की मिट्टी (क्ले) की संरचना पर खोजबीन करूँ। उनका सुझाव था कि मुझे एक्स-रे के अलावा उष्मीय और रासायनिक विश्लेषण भी करना चाहिए और यह भी कि कूलिज की तरह का एक एक्स-रे मशीन मैं खुद बनाऊँ जिसे खोल-खालकर कहीं भी अपनी मर्ज़ी से दोबारा जोड़ा जा सके।

उस समय खैरा प्रयोगशाला में हम कोई दस लोग प्रायोगिक शोध में लगे थे। हममें से हरेक अपनी ज़रूरत के मुताबिक अपने-अपने उपकरण खुद तैयार करते थे। हमारी प्रयोगशाला का यह एक अलिखित नियम था। अनुभवी शोध छात्र नए विद्यार्थियों को इस तरह से काम करने में मदद करते थे और प्रो. बोस लगातार प्रयोगशाला में आ रही दिक्कतों और हमारी प्रगति की खोज-खबर रखते थे। सहपाठियों के बीच और सम्बन्धित विभागों में काम कर रहे लोगों के साथ भी एक सृजनात्मक सहयोग का माहौल हुआ करता था। इस तरह से विज्ञान करने में हम सबको मज़ा भी आता था और उत्साह भी रहता था।

आज-कल, शोध की गति को तेज़ करने के उद्देश्य से आसानी से मिलने वाले, महँगे, आयातित उपकरणों को खरीदने का चलन हो गया है। अगर बोस के द्वारा स्थापित आदर्श का पालन किया जाता, तो धीमी गति के बावजूद, हमारे देश में एप्लाइड साइंस के क्षेत्र में एक अधिक आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी वैज्ञानिक संस्कृति का विकास शायद सम्भव हो पाता।

हमारी एक्स-रे मशीन में लगने वाले उच्च वोल्टेज ट्रांसफॉर्मर का निर्माण हमारे विश्वविद्यालय के एप्लाइड साइंस विभाग में किया गया था। अपनी एक्स-रे मशीन को हमने डॉ. बिधान राय के घर के पीछे इकट्ठा हुए दूसरे विश्वयुद्ध के कबाड़ में से तैयार किया था। और बाकी के हिस्से हमारे विभाग की वर्कशॉप में बनाए गए थे।

एक्स-रे प्रयोगशाला में की गई हमारी कोशिशों से आखिरकार, लगभग 50 तरह की मिट्टी के नमूनों को काओलिनाइट, मॉन्टमोरिल्लोनाइट, इल्लाइट, वर्मीक्युलाइट, क्लोराइट आदि वर्गों में पूरी तरह से वर्गीकृत किया जा सका। इस खोजबीन के नतीजों को 1955 में एकत्र किया गया। 1956 में प्रो. बोस कोलकाता विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त हो गए और हम लोगों ने प्रो. कमलक्ष दासगुप्ता के सहयोग से मिट्टी के इन नमूनों की संरचना का और बारीक एक्स-रे अध्ययन किया।

उस समय से आज तक जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट, इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी और कई और संस्थानों से मिट्टी के नमूनों के एक्स-रे अध्ययन पर कई शोध प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। बहुत कम लोगों को यह पता होगा कि भारत के एक बेहतरीन थियोरेटिकल भौतिकविज्ञानी, एस.एन. बोस ने ही पहली बार देश के कई भागों से लाए गए मिट्टी के नमूनों की संरचना का एक्स-रे विश्लेषण का काम शुरू करवाया था।

– पूर्णिमा सिन्हा

रहीं। अब वे सेवा निवृत्त हैं, और विज्ञान के लोकव्यापीकरण के लिए श्रोडिंजर की 'माइण्ड एण्ड मैटर' तथा कामेनेत्सकी की 'अनरैवेलिंग डीएनएः दि मोस्ट इम्पॉर्टेन्ट मॉलेक्यूल ऑफ लाइफ' जैसी किताबों का बांग्ला में अनुवाद करती रहती हैं।

चलिए, मैं समय की घड़ी में पीछे की ओर चल देती हूँ और उस पारिवारिक माहौल को देखने की कोशिश करती हूँ जहाँ मेरी माँ पली-बढ़ीं। उनके पिता - डॉ. नरेशचन्द्र सेनगुप्ता - एक सम्वैधानिक वकील तथा प्रगतिशील लेखक थे जिन्होंने

बांग्ला व अँग्रेज़ी में 65 से ऊपर किताबें तथा कई लेख लिखे थे। इनमें से कुछ औरतों की शिक्षा के मुद्दे पर भी थे। उनके कई उपन्यास नारी-मुक्ति के मुद्दे के इर्द-गिर्द रचे गए। उनके परिवार पर उनका बहुत ज़बरदस्त प्रभाव था।

उनकी चार बेटियों - मेरी माँ जो अब 80 साल की हैं और मेरी तीन मासियाँ - ने भौतिकी, अर्थशास्त्र, गणित और रसायन शास्त्र का अध्ययन किया। औरतों की उच्च शिक्षा की ओर ध्यान देने का यह ज़ोरदार सिलसिला इनके बाद की पीढ़ी तक जारी रहा। ननिहाल के तरफ की मेरी बहनों में से कई आज गणित, आण्विक जैवविज्ञान, सांख्यिकी, चिकित्सा विज्ञान आदि का अध्ययन कर रही वैज्ञानिक हैं। नतीजतन, आज मैं यह महसूस करती हूँ कि मैं जिस तरह के दृष्टिकोण के साथ बड़ी हुई, वह उस आम दृष्टिकोण से बहुत अलग है जिसके साथ अधिकतर लोग बड़े होते हैं। दुनिया के प्रति मेरे नज़रिए को इन सब औरतों ने आकार दिया है और मैं इस विश्वास के साथ बड़ी हुई कि ऐसी औरतें ही सामान्य हैं, अपवाद नहीं।

अगर वर्तमान में लौटकर मेरे उस माता-पिता और दो बहनों वाले छोटे से परिवार को देखें जिसमें मैं पली-बढ़ी हूँ, तो खुद को बहुत खुशकिस्मत पाती हूँ। मेरे नृशास्त्री व कलाकार पिता और मेरी माँ ने, जो उतनी ही एक कलाकार थीं जितनी कि भौतिकशास्त्री, मेरी बहन सुकन्या (जो आज इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टिट्यूट, बैंगलूरु में कार्यरत एक भौतिकशास्त्री है) और मेरे लिए घर में एक ऐसा माहौल तैयार किया था जहाँ सीखना, समझना और सृजन करना जीवन के अभिन्न अंग थे। घर में मिलने आने वालों में शामिल थे कई कवि, नाटककार, सत्यजीत राय जैसे फिल्म निर्माता, चित्रकार, निर्मल बोस जैसे वैज्ञानिक, जो मेरे पिता के मार्गदर्शक थे और वैज्ञानिक सत्येन बोस, जो मेरी माँ के गुरु थे। बचपन के दिनों में ललित कलाओं में मेरी उतनी ही रुचि थी जितनी कि गणित में। घर पर भौतिकी की बेहतरीन किताबों का एक

सुरोजित सिन्हा की किताब का आवरण चित्र जिसे पूर्णिमा सिन्हा और सुपूर्णा सिन्हा द्वारा बनाया गया।

बड़ा-सा ज़खीरा हमारे पास मौजूद था जिन्हें मेरी माँ पढ़ती थीं। परन्तु भौतिकी को, जो तर्क और प्राकृतिक दुनिया के साथ सम्बन्धों का एक अनोखा मिश्रण है, एक विषय के रूप में समझने और सराहने में मुझे कुछ और वक्त लगा। विश्वविद्यालय की पढ़ाई से पहले, कोलकाता के साउथ पॉइंट हाई स्कूल में हमारे भौतिकी के शिक्षक अंजन दासगुप्ता ने हममें से बहुतों को इस विषय की खूबसूरती से परिचित कराया।

भौतिकी में स्नातक की पढ़ाई पूरी कर मैं देश छोड़कर एम.एस.-पीएच.डी. करने सायराक्यूज़ युनिवर्सिटी, अमरीका गई। वहाँ अपनी पढ़ाई के अन्तिम दौर में आगे अध्ययन करने की दृष्टि से सैद्धान्तिक संघनित पदार्थ भौतिकी (थियोरेटिकल कंडेंस्ड मैटर फिज़िक्स) को प्रयोगों के साथ ज़्यादा जुड़ाव के कारण उच्च ऊर्जा भौतिकी व गुरुत्वाकर्षण की तुलना में मैंने अधिक आकर्षक पाया। मेरे इस चुनाव में मेरे शिक्षक रंजन भट्टाचार्य व मेरे मामा श्यामल सेनगुप्ता के निश्चित प्रभाव भी थे। उसी समय मारिया क्रिसटीना मारकेटी नाम की एक सैद्धान्तिक संघनित पदार्थ भौतिकविज्ञानी सायराक्यूज़ विश्वविद्यालय से जुड़ीं और अपनी पीएच.डी. के लिए शोध-गाईड के रूप में स्वाभाविक ही मैंने उन्हें चुना।

पीएच.डी. के आखिरी सालों तक भौतिकी में काम करना मेरे लिए बहुत सकारात्मक अनुभव रहा। मेरे सभी शिक्षक और मेरे सहपाठी भी, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, सबने मुझे प्रोत्साहन दिया और अक्सर भौतिकी में काम करने की मेरी शैली और सवालों को सुलझाने के मेरे नज़रिए को सराहा।

बाद के वर्षों में मैंने धीरे-धीरे विज्ञान के अध्ययन में और एक वैज्ञानिक तथा एक माँ के रूप में अपनी पहचानों के बीच ताल-मेल बनाने में क्रिसटीना के साहस, ज़िद और प्रेरणा को सराहना सीखा। इन चीज़ों के बारे में मैं तब तक नहीं समझ पाई थी जब तक कि मैंने खुद लिंग आधारित भेद-भाव का सामना नहीं किया। मेरे पीएच.डी. के वर्षों में मेरी प्रेरणा के एक प्रमुख स्रोत थे रफैल सॉरकिन, जिनके साथ मैंने क्वांटम डिफ्युज़न पर एक पर्चे पर काम किया था। भौतिकी और उससे आगे भी उनके पैने दिमाग और खुली सोच ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

सायराक्यूज़ युनिवर्सिटी में पीएच.डी. के दौरान ही मैं जोसेफ सैम्युएल से मिली जो एक थियोरेटिकल भौतिकविज्ञानी थे और जिससे मैंने बाद में शादी की। पीएच.डी. के बाद मुझे काम के लिए युरोप, अमरीका, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, मुम्बई और इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलूरु से प्रस्ताव मिले थे। मैंने इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलूरु में पोस्ट-डॉक फैलो के रूप में काम करने का चुनाव किया

क्योंकि यहाँ के भौतिकी विभाग में चल रहा शोध का काम मेरी रुचियों के करीब था, और मैं अपने पति के साथ भी होना चाहती थी। मेरे पति और मुझे जोड़ने वाली सबसे महत्वपूर्ण कड़ियों में भौतिकी भी शामिल है। 1996 में जन्मी हमारी बेटी - रोशनी - भी हमारी ही तरह जिज्ञासु स्वभाव की है। बहुत सारी चुनौतियों के बावजूद जिस बात ने मुझे भौतिकी के काम में कायम रखा है वह है मेरे पति और मेरे सास-ससुर का समर्थन।

अब तक मैंने केवल सकारात्मक प्रभावों का ही ज़िक्र किया है। भौतिकी को अपना कैरियर बनाने में जो नकारात्मक अनुभव हुए, उनकी बात नहीं की है। बदकिस्मती यह है कि एक शोध वैज्ञानिक के रूप में खुद को स्थापित करने की कोशिशों में बहुत-सी बाधाएँ रही हैं। जिन भेद-भावों का मैंने सामना किया है वे एक पुरुष-प्रधान वैज्ञानिक व्यवस्था की देन हैं जिसके पूर्वाग्रहों ने स्त्री और पुरुष, दोनों पर असर डाले हैं। जिस तरह के भेद-भाव का सामना मैंने पुरुष वैज्ञानिकों के कारण किया है, कभी-कभी लगभग वैसा ही महिला वैज्ञानिकों के द्वारा भी महसूस किया है। जब भी मैंने इस विषय पर एक तार्किक चर्चा की कोशिश की, मुझे चर्चा खत्म कर देने वाले प्रत्युत्तर ही मिले हैं। ऐसे में एक आम जवाब कि "पुरुष भी तो ऐसे भेद-भाव सहते हैं" मिलता रहा है। यह तो कोई कैफियत न हुई। यह तो यूँ है कि नस्लभेद को वाजिब ठहराने के लिए जाति-प्रथा की बात करो, या जाति-भेद को सही बताने के लिए रंगभेद की।

यह मेरा चुनाव था कि मैं एक वैज्ञानिक बनूँ। कि मैं भारत में रहूँ और काम करूँ। कि मेरा एक बच्चा हो, एक परिवार हो। अगर वैज्ञानिक व्यवस्था मेरे जैसे लोगों के साथ भेदभाव करती है तो वह इस देश की आधी प्रतिभाओं से महरूम रह जाएगी। यह एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसे गँवाने का दुस्साहस भारत नहीं कर सकता।

सुपूर्णा सिन्हा : रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट, बैंगलूरु में थियोरेटिकल कंडेंस्ड मैटर फिज़िसिस्ट हैं। चित्रकारी और बच्चों के लिए चित्र पुस्तकें बनाने में रुचि। विज्ञान के प्रचार-प्रसार में भी दिलचस्पी रखती हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद : टुलटुल बिस्वास - एकलव्य के प्रकाशन समूह से जुड़ी हैं।

पुस्तक : लीलावतीज़ डॉटर्स
सम्पादक : रोहिणी गोडबोले व राम रामास्वामी
प्रकाशक : इण्डियन एकेडमी ऑफ साइंसेज़, 2008
पृष्ठ संख्या : 386, **कीमत** : तीन सौ रुपए